भारतीय वित्तीय क्षेत्र के सुधार *

वी. लीलाधर

प्रस्तावना

आरंभ में मैं इंस्टीट्यूट आफ इंटरनेशनल बैंकर्स को धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने मुझे वार्षिक वाशिंग्टन सम्मेलन 2007 में अपने विचार रखने का अवसर प्रदान किया।

पिछले 15 वर्षों में भारत में बैंकिंग प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं। अब यहां नए बैंक हैं, नए लिखत हैं, नए मार्ग हैं, नए अवसर हैं और इन सबके साथ-साथ नई चुनौतियां भी हैं। अविनियमन से जहां बैंकों को राजस्व उगाहने के नए-नए जरिए मिले हैं वहीं बड़ी प्रतिस्पर्धा के साथ बड़े-बड़े जोखिमों से निपटने की चुनौती भी मिली है। बैंक का वित्तीय मध्यस्थ वाला चेहरा अब बदल रहा है और जोखिम प्रबंधन अब इसका बदलता हुआ स्वरूप है।

ढांचागत सुधार के रूप में 1990 के दशक के शुरुआती दौर में शुरू किए गए वित्तीय क्षेत्र के सुधारों ने बैंकिंग परिचालन के लगभग सभी पहलुओं को छुआ है। भारत में बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र के सुधार शुरू होने के कुछ दशक पहले तक बैंक जबरदस्त रूप से विनियमित माहौल में काम करते थे और इन पर प्रवेश संबंधी कई बंदिशें थीं, जिसकी वजह से ये अत्यधिक प्रतिस्पर्धा से बचे रहे। इस विनियमित माहौल से वह संतोषजनक वातावरण बना था जिसमें बैंक परिचालन करते थे और ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। देयता और आस्ति दोनों ही तरफ प्रशासित ब्याज दर ढांचा होने से बैंकों को बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के पर्याप्त फैलाव हासिल हो गया । तथापि, इसके बावजूद बैंकों की लाभप्रदता कम रही और एनपीएल का स्तर ऊंचा बना रहा। इससे इनकी दक्षता में कमी जाहिर होती है। हालांकि बैंकों को सरकारी प्रतिभूतियों (सांविधिक चलनिधि अनुपात या एसएलआर) तथा नकदी आरक्षित

* श्री वी.लीलाधर, उप गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक का 5 मार्च 2007 के इंस्टीट्यूट आफ इंटरनेशनल बैंकर्स के वार्षिक वाशिंग्टन सम्मेलन में दिया गया भाषण।

अनुपात (सीआरआर) रखने की विनियामक बाध्यता तथा कार्यात्मक स्वतंत्रता और परिचालनात्मक दक्षता में कमी के माहौल में काम करना पड़ा, मगर सच्चाई यही है कि अधिकांश बैंक दक्षात्मक स्थिति में काम नहीं कर पाए।

मोटे तौर पर वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का उद्देश्य दक्षता और उत्पादकता बढ़ाना ही था मगर सुधार की यह प्रक्रिया क्रमिक तथा समुचित तरीके से लागू की गई ताकि प्रभावी असर पड़े। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य यह था कि परामर्शी प्रक्रिया से अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम परंपराओं को अपनाकर वित्तीय क्षेत्र का लगातार उन्नयन करने का प्रयास किया जाए। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का कार्य दो चरणों में पूरा किया गया। प्रथम चरण के सुधारों में परिचालनात्मक लोच और कार्यात्मक स्वायत्तता के माहौल में कार्य कर रहे उत्पादक और लाभप्रद वित्तीय संस्थान बनाने का लक्ष्य रखा गया। 1990 के दशक के उत्तरार्ध से शुरू हुए वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के दूसरे चरण में वित्तीय सेवाओं के वैश्विक एकीकरण को मद्देनजर रखते हुए वित्तीय प्रणाली को मजबूती प्रदान करने पर जोर दिया गया।

भारत में वित्तीय क्षेत्र के सुधार

ब्याज दरों का अविनियमन वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का अभिन्न अंग है। ब्याज दर मुख्यतः इस दृष्टिकोण से अविनियमित की गई ताकि बेहतर मूल्य की खोज की जा सके और दक्षतापूर्ण संसाधनों का आबंटन किया जा सके। बैंकों को अब अपने जमा और उधार दर तय करने में लोच प्रदान की गई ताकि वे अपनी आस्ति-देयताओं का प्रबंधन तदनुसार कर सकें। संप्रति, जमा वाले खंड में बचत जमा तथा अनिवासी भारतीय (एनआरआइ) जमा और उधार वाले खंड में 2 लाख रुपए तक के छोटे ऋण की ब्याज दर के अलावा अन्य सभी ब्याज दरें अविनियमित कर दी गई हैं।

भारतीय बैंकिंग प्रणाली एक लंबे समय तक सीआरआर तथा एसएलआर दोनों की ही उच्च आरक्षित अपेक्षाओं के मध्य परिचालित होती रही। ऐसा मुख्यतः उच्च राजकोषीय घाटे और इसके मौद्रीकरण का निभाव करने के कारण हुआ। हाल ही में सीआरआर और एसएलआर दोनों को ही कम करने के प्रयास किए गए। एसएलआर को 38.5 प्रतिशत के उच्च-स्तर से कम करके 25 प्रतिशत पर लाया गया। सीआरआर को 1989 से 1992 के 15.0 प्रतिशत के उच्च स्तर से जून 2003 में निवल मांग और मीयादी देयताओं के 4.5 प्रतिशत पर लाया गया। यद्यपि मध्यावधि लक्ष्य के रूप में रिज़र्व बैंक सीआरआर कम करने के प्रयास जारी रखेगा पर हाल के वर्षों में समष्टि आर्थिक तथा मौद्रिक परिस्थितियों की समीक्षा के उपरांत सीआरआर बढ़ाकर 6.0 प्रतिशत कर दिया गया (3 मार्च 2007 से प्रभावी)।

एक सक्षम विनियामक ढांचे का निर्माण करना रिज़र्व बैंक का प्रयास रहा है जिसमें त्वरित और प्रभावी पर्यवेक्षण और कानूनी, तकनीकी और संस्थागत ढांचे के विकास का प्रावधान हो। अतः, भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर अंतरराष्ट्रीय बेंचमार्कों को अपनाने के प्रयास किए जाते रहेंगे। 1994 में वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड का गठन किया गया। इसमें विभिन्न पेशेवर दक्षताओं वाले रिज़र्व बैंक बोर्ड के व्यक्ति शामिल थे। इस बोर्ड का उद्देश्य 'पर्यवेक्षण पर समग्र ध्यान' केंद्रित करना और वाणिज्य बैंकों और वित्तीय संस्थानों के पर्यवेक्षण के किए समेकित नीति सुनिश्चित करना था। पूर्व चेतावनी प्रणाली (ईडब्ल्यूएस) और अतिसंवेदनशील संस्थानों के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण के संकेत के लिए आपदा प्रबंधन ढांचे के भाग के रूप में रिज़र्व बैंक ने 1995 में बैंकों के किए अत्याधुनिक अप्रत्यक्ष निगरानी और चौकसी प्रणाली (ओसमोस) स्थापित की। परोक्ष निगरानी के दायरे एवं व्याप्ति को

बढ़ाते हुए बैंकों की दक्षता और जोखिम प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं को इसमें शामिल किया गया है।

वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के अंग के रूप में पूंजी पर्याप्तता, आय पहचान, आस्ति वर्गीकरण तथा प्रावधानों से संबंधित विनियामक मानदंडों को क्रमिक रूप से अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप बनाने का प्रयास किया गया। इन उपायों से बैंकों के तुलन पत्रक में पारदर्शिता बढ़ी और इनके कार्यों में जवाबदेही भी आई। अमानक आस्तियों के अलावा, मानक आस्तियों के लिए भी प्रावधान किए जाने शुरू किए गए। जोखिम प्रबंधन की बेहतर प्रणालियों से एनपीए के संघीभूत स्तर को कम करने के उपाय किए गए और सिक्यूरिटाइजेशन एंड रिकंस्ट्रक्शन आफ फाइनेंसियल असेट्स एंड एनफोर्समेंट आफ सिक्यूरिटी इंटरेस्ट (सरफेसाई) एक्ट, 2002 के बनने से बड़े पैमाने पर वसूली के प्रयास किए गए। ऋण वसूली न्यायाधिकरण, लोक अदालत और छोटे तथा मझौले उद्योगों के किए अलग योजनाओं सहित कंपनी ऋण पुनर्संरचना प्रणाली समेत एनपीए के प्रबंधन के लिए कई अन्य चैनल बनाए गए हैं।

न्यूनतम जोखिम भारित आस्तियों के प्रति पूंजी अनुपात (सीआरएआर) पहले आठ प्रतिशत निर्धारित किया गया था जिसे 1999 में संशोधित करके 9 प्रतिशत कर दिया गया और यह अंतरराष्ट्रीय मानदंडों से एक प्रतिशत अंक अधिक है। चूंकि सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ बैंक सीआरएआर निर्धारणों का अनुपालन नहीं कर पा रहे हैं, अतः आवश्यकता है कि उनके पूंजी आधार को बढ़ाने के लिए उन्हें पुनः पूंजी उपलब्ध कराई जाए। बैंकों को बाजार से पूंजी उठाने की अनुमति दी गई। बासल I में बाजार जोखिम शामिल करने के लिए किए गए संशोधनों के अनुरूप 2004 से बाजार जोखिम के लिए अलग पूंजी प्रभार शुरू किए गए।

लेखा मानकों और प्रकटीकरण मानदंडों को इस दृष्टिकोण के साथ मजबूती प्रदान की गई ताकि गवर्नेंस में सुधार आ सके और ये अंतरराष्ट्रीय मानदंड के अनुरूप बन सकें। प्रकटीकरण अपेक्षाओं में मोटे तौर पर पूंजी पर्याप्तता, आस्ति की गुणवत्ता, आस्ति और देयताओं की चुनिंदा मदों का परिपक्वता वितरण, लाभप्रदता, देश जोखिम एक्सपोजर, व्युत्पन्नों में जोखिम एक्सपोजर, खंड रिपोर्टिंग और संबंधित पक्ष प्रकटीकरण शामिल हैं। अप्रैल 2005 में वाणिज्य बैंकों को सूचित किया गया कि वे एक निश्चित समय सीमा के अंदर सूचना जोखिम प्रबंधन की सुदृढ़ प्रणाली के साथ-साथ कारोबारी निरंतरता के उपाय लागू करें।

बैंकों में बढ़ते हुए अविनिमयन एवं विभिन्न प्रकार के जोखिमों के प्रति इनके एक्सपोजर को देखते हुए रिज़र्व बैंक ने बैंकों में जोखिम प्रबंधन प्रणाली को और मजबूती प्रदान करने तथा इसे सुचारु ढंग से चलाने के लिए कई उपाय किए हैं। 1999 में बैंकों में आस्ति-देयता प्रबंधन तथा जोखिम प्रबंधन प्रणाली पर दिशानिर्देश और अक्तूबर 2002 में ऋण जोखिम प्रबंधन तथा बाजार जोखिम प्रबंधन पर मार्गदर्शी नोट और 2005 में परिचालनात्मक जोखिम प्रबंधन पर मार्गदर्शी नोट जारी किए गए। रिज़र्व बैंक ने 2003 से पर्यवेक्षण के लिए जोखिम-आधारित रुख अपना रखा है और लगभग 23 बैंकों को परीक्षण आधार पर जोखिम-आधारित पर्यवेक्षण (आरबीएस) के दायरे में लिया है। परीक्षण प्रोजेक्ट से प्राप्त फीडबैक के आधार पर आरबीएस ढांचे की समीक्षा की जा रही है।

सुधार कार्यक्रम के अंग के रूप में बेहतर बाजार जवाबदेही और परिष्कृत दक्षता के लिए बैंकिंग संस्थानों के स्वामित्व में विविधता लाने पर पर्याप्त ध्यान दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने बाजार में उतरकर

अपना पूंजी आधार बढ़ाया है जिससे सरकारी स्वामित्व कम हुआ है। बैंकों को बासल II में अंतरित होने के मद्देनजर पूंजी उगाहने के अतिरिक्त विकल्प के रूप में जनवरी 2006 में रिज़र्व बैंक ने इन्हें अतिरिक्त लिखत जारी करने की अनुमति दी ताकि पूंजीगत निधि बढ़ाई जा सके।

प्रतिस्पर्धा के माध्यम से दक्षता और उत्पादकता बढ़ाने के उद्देश्य से निजी क्षेत्र में नए बैंकों को स्थापित करने के बारे में दिशानिर्देश निर्धारित किए गए और विदेशी बैंकों के प्रवेश के बारे में और रियायतें प्रदान की गईं। 1993 से निजी क्षेत्र में 12 नए बैंक स्थापित किए गए। बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के उद्देश्य से एक बड़ा कदम उठाते हुए निजी क्षेत्र के बैंकों में अब 74 प्रतिशत तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई। यह अनुमति समय-समय पर जारी दिशानिर्देशों के अनुपालन के अधीन होगी। भारतीय विनियामक ढांचा विवेकसम्मत दिशानिर्देश निर्धारित करने और बाजार अनुशासन को बढ़ावा देने के साथ-साथ 'उपयुक्त एवं उचित' स्वामियों, निदेशकों और वरिष्ठ प्रबंधकों के माध्यम से बेहतर गवर्नेंस सुनिश्चित करने पर भी जोर देता है। पांच प्रतिशत या इससे अधिक की शेयरधारिता के अंतरण की रिज़र्व बैंक से स्वीकृति आवश्यक है और ऐसे महत्वपूर्ण शेयरधारकों से अपेक्षित है कि वे 'उपयुक्त एवं उचित' की कठोर आवश्यकताओं को पूरा करें। बैंकों से यह भी सुनिश्चित करने को कहा गया कि नामित और चुने हुए निदेशक की नामिती समिति द्वारा 'उपयुक्त एवं उचित' मानक के लिए स्क्रीनिंग हो। अपनी भूमिका और जिम्मेदारी के बारे में निदेशकों को एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करना भी अपेक्षित होगा। वैविध्यपूर्ण स्वामित्व पर जोर देते हुए निजी क्षेत्र के बैंकों में स्वामित्व और गवर्नेंस पर रिज़र्व बैंक ने विस्तृत दिशानिर्देश जारी किए।

रिज़र्व बैंक मार्च 2005 डब्ल्यूटीओ समझौते के अनुरूप विदेशी बैंकों के लिए मुक्त नीति का खाका जारी किया। इस खाके को दो भागों में बांटा गया है। मार्च 2005 से मार्च 2009 के पहले चरण में, जो विदेशी बैंक पहली बार भारत में अपने पैर जमाना चाहते हैं वे किसी एक तरीके का इस्तेमाल करते हुए या तो शाखाओं के माध्यम से परिचालन करें या 100 प्रतिशत पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियों (डब्ल्यूओएस) के माध्यम से ऐसा कर सकते हैं। नए और वर्तमान विदेशी बैंकों के बारे में प्रस्ताव है कि वे एक वर्ष में 12 शाखाओं संबंधी वर्तमान डब्ल्यूटीओ समझौते से आगे जा सकते हैं। इस चरण में, पात्र विदेशी बैंकों द्वारा निजी क्षेत्र के भारतीय बैंकों के शेयर अधिगृहीत करने की अनुमति देने के संबंध में रिज़र्व बैंक केवल उन्हीं बैंकों की अनुमति देगा जिन्हें उसने पुनर्संरचना के लिए चिन्हित किया है। प्राप्त अनुभव की समीक्षा तथा बैंकिंग क्षेत्र के सभी स्टेकधारकों से विचार-विमर्श के उपरांत दूसरा चरण अप्रैल 2009 से शुरू होगा। इस चरण में तीन अंतर-संबंधित मसलों को लिया जाएगा। पहला मसला, डब्ल्यूओएस के परिचालनों पर प्रतिबंध हटाने तथा समुचित स्तर तक इन्हें घरेलू बैंकों के समान मानने के नियमों को बनाया तथा कार्यान्वित किया जाएगा। दूसरा मसला, विदेशी बैंकों के डब्ल्यूओएस द्वारा परिचालन की एक निश्चित समयावधि पूरा करने के पश्चात इन्हें सूचीबद्ध होने की अनुमति तथा 5 मार्च 2004 को जारी दिशानिर्देशों के अनुरूप अपने स्टेक को उस स्तर तक कम करने की अनुमति प्रदान करना जिसमें सहायक कंपनी की चुकता पूंजी में निवासी भारतीयों की हिस्सेदारी सर्वकालिक रूप में कम-से-कम 26 प्रतिशत के स्तर पर रहे। तीसरा मसला, इस चरण में विदेशी बैंकों को अनुमति दी जाए कि 74 प्रतिशत की समग्र निवेश सीमा के अधीन वे भारत में निजी क्षेत्र के किसी भी बैंक के साथ विलय और अधिग्रहण का कार्य कर सकते हैं।

हाल के वर्षों में ऐसी व्यापक ऋण सूचना महत्वपूर्ण हो गई है जिसमें किसी उधारकर्ता द्वारा ली गई उधार संबंधी सुविधाओं और चुकौती संबंधी जानकारी दी गई हो। तदनुसार, बैंकों और वित्तीय संस्थानों के चूककर्ता उधारकर्ताओं की सूचना के प्रकटीकरण के लिए एक योजना शुरू की गई। ऋण संबंधी मामलों की जानकारी का आदान-प्रदान करने के लिए 2000 में ऋण सूचना ब्यूरो (भारत) लिमिटेड (सिबिल) का गठन किया गया।

बैंकों के प्रति शिकायतों की निपटान प्रणाली के रूप में रिज़र्व बैंक ने 1995 में बैंकिंग लोकपाल योजना अधिसूचित की। योजना का उद्देश्य ग्राहकों की शिकायतों का त्वरित और बिना खर्चे के निपटान करना है। इस योजना में पहली बार 2002 में और दूसरी बार 2006 में संशोधन किए गए। संप्रति, यह योजना रिज़र्व बैंक द्वारा 15 केंद्रों पर नियुक्त बैंकिंग लोकपाल (बीओ) के माध्यम से पूरे देश में कार्यान्वित की जा रही है। बैंकिंग लोकपाल योजना के दायरे में सभी वाणिज्य बैंक और अनुसूचित प्राथमिक सहकारी बैंक आते हैं। योजना में हाल ही में किए गए संशोधनों से इसके दायरे में आने वाली शिकायतों का दायरा और व्यापक हो गया है।

ग्राहकों के प्रति उचित व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए व्यापक आचार संहिता बनाई गई है और इसका पालन सुनिश्चित करने के लिए यूनाइटेड किंगडम की तर्ज पर एक स्वतंत्र भारतीय बैंकिंग कोड और मानक बोर्ड का गठन किया गया है। व्यापक पैमाने पर वित्तीय समावेशन सुनिश्चित करने के लिए नवंबर 2005 से सभी बैंकों के लिए आवश्यक है कि वे आधारभूत बैंकिंग के लिए 'नो फ्रिल' खाता उपलब्ध कराएं जिसमें न्यूनतम शेष राशि या तो 'कुछ नहीं' हो या फिर बहुत ही कम हो। साथ ही, इन खातों में लेन-देन के लिए लगाए जाने वाले प्रभार ऐसे हों जिसमें इनकी पहुंच आबादी के एक विशाल भाग तक हो सके। बैंकों से अनुरोध किया गया कि वे अपनी वर्तमान प्रणाली को 'वित्तीय समावेशन' प्रक्रिया के अनुरूप ढालें।

वित्तीय स्थिरता की पूर्व-शर्त है कि भुगतान और निपटान प्रणाली सुचारु ढंग से काम करे। अतः, देश में बेहतरीन स्थिति में भुगतान और निपटान प्रणाली विकसित करने के लिए रिज़र्व बैंक ने समय-समय पर कई कदम उठाए हैं। मार्च 2005 में रिज़र्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड की समिति के रूप में गठित भुगतान एवं निपटान प्रणाली विनिमयन और पर्यवेक्षण बोर्ड (बीपीएसएस) भुगतान और निपटान प्रणाली के बारे में नीतिगत निदेश देने वाला सर्वोच्च निकाय है। 26 मार्च 2004 को तत्काल सकल भुगतान प्रणाली (आरटीजीएस) का परिचालन शुरू हुआ। निधियों का अंतरण, विशेषतः बड़े मूल्य वाली और प्रणाली के लिए महत्वपूर्ण उद्देश्यवाली, तब से काफी बढ़ गया है। आरटीजीएस के शुरू होने से संसाधित दिवस पर सकल तत्काल आधार पर एकल अंतर-बैंक निधि अंतरण के अंतिम निपटान से वित्तीय प्रणाली में सिस्टम जोखिम का मुख्य स्रोत काफी हद तक कम हो गया है।

बैंकों द्वारा स्थापित भारतीय समाशोधन निगम लि. (सीसीआइएल) ने सरकारी प्रतिभूतियों और विदेशी मुद्रा विनिमय के लिए जोखिम मुक्त भुगतान और निपटान प्रणाली स्थापित की है। सीसीआइएल सभी लेनदेनों के लिए केंद्रीय प्रतिपक्ष (सीसीपी) की भूमिका निभाता है और लेनदेन के प्रतिभूति तथा निधि दोनों ही भागों के लिए गारंटी भी देता है। निपटान के लिए अपनाए गए सुपुर्दगी बनाम भुगतान III तरीके में प्रतिभूति भाग और निधि भाग दोनों ही निवल आधार पर निपटाए जाते हैं। इस तरह सीसीआइएल के माध्यम से किए गए निपटानों से डॉलर की कुल आवश्यकता में 90 प्रतिशत

से भी अधिक की कमी आई है। 18 सितंबर 2006 को सीसीआइएल ने मांग/नोटिस तथा मीयादी मुद्रा बाजार (एनडीएस-कॉल) में लेनदेन के लिए स्क्रीन-आधारित तयशुदा बोली आधार पर चलने वाली प्रणाली (स्क्रीन-बेस्ड नेगोशिएटिड कोट-ड्रिविन सिस्टम) स्थापित की है। एनडीएस-कॉल शुरू करने से पारदर्शिता, मूल्य निश्चित करने में सुधार और बाजार का व्यष्टि-ढांचा मजबूत करने में सुविधा हुई है।

भारत में वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का प्रभाव

बढ़ते हुए प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में निधियों के स्रोतों और उनके उपयोग के बारे में स्वविवेक का प्रयोग करने के बारे में बैंकों को अधिक आजादी दी गई। शाखाओं/एटीएम के विस्तार से भारतीय बैंकिंग प्रणाली की पहुंच बढ़ गई है। सुधार के पश्चात के युग में बैंकों की आस्ति/देयताओं में अनवरत रूप से उच्च दर पर वृद्धि हो रही है। बैंकों के वित्तीय कार्यनिष्पादन में भी सुधार हो रहा है और उनकी बढ़ती लाभप्रदता से यह झलकता भी है। आस्ति अनुपात के प्रति निवल लाभ 2000-01 के 0.49 प्रतिशत से बढ़कर 2003-04 में 1.13 प्रतिशत हो गया। यद्यपि 2005-06 में यह गिरकर 0.88 प्रतिशत रह गया है, फिर भी 1990 के दशक के शुरुआती दौर से यह फिर भी अधिक है। अपनी आय में लगातार वैविध्यीकरण लाकर बैंकों ने ब्याज दर चक्र में आ रही तेजी के असर को कम करने में सफलता पाई है। सूचना तकनीक के उन्नयन में बैंकों को यद्यपि बहुत खर्च करना पड़ा है मगर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में कार्यशक्ति की पुनर्संरचना करने से स्टाफ संबंधी व्यय कम करने और प्रति कर्मचारी कारोबार बढ़ाने में सहूलियत हुई है।

गैर निष्पादक ऋणों (एनपीएल) में तेजी से कमी आना भी एक स्वागत योग्य घटना है। 2002-03 से सकल और निवल दोनों ही एनपीएल निरपेक्ष रूप से कम होने लगे। सकल अग्रिमों के प्रतिशत के रूप में सकल एनपीएल 1990 के शुरुआती दशक में 15 प्रतिशत से अधिक थे जो अब 3 प्रतिशत से भी कम हैं। आस्ति गुणवत्ता में आए इस बेहतरीन सुधार का श्रेय सुदृढ़ समष्टि आर्थिक निष्पादन से समर्थित वसूली के अच्छे माहौल के साथ-साथ रिज़र्व बैंक/सरकार द्वारा शुरू किए गए ऋण वसूली न्यायाधिकरण, लोक अदालत, 2001 की कंपनी ऋण पुनर्संरचना योजना, सरफेसाई एक्ट, 2002 जैसे संस्थानिक उपायों को जाता है।

1995-96 से पूरा बैंकिंग क्षेत्र लगातार निर्धारित सीमा से अधिक सीआरएआर रख रहा है। अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के लिए 1996 की मार्च समाप्ति का 8.7 प्रतिशत का सीआरएआर 2006 की समाप्ति पर बढ़कर 12.3 प्रतिशत हो गया। 1996 के मार्च के अंत में न्यूनतम सीआरएआर न रखने वाले बैंकों की संख्या 13 थी जो मार्च 2006 के अंत में दो रह गई। पूंजी की स्थिति में सुधार मुख्यतः लाभप्रदता में सुधार और बाजार से पूंजी उगाहने के कारण हुआ। हालांकि, शुरुआती दौर में सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ कमजोर बैंकों का पुनर्पूंजीकरण करने के लिए सरकार को निधि उपलब्ध करानी पड़ी थी।

कुल आस्तियों और आय में लगभग तीन-चौथाई हिस्सा बनाए रखते हुए भारतीय बैंकिंग प्रणाली में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने अपना प्रभुत्व बनाए रखा, मगर बैंकिंग क्षेत्र में बढ़ती प्रतिस्पर्धा के चलते सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की हिस्सेदारी में गिरावट आ रही है और 1990 के दशक के बीच में स्थापित निजी क्षेत्र के नए बैंकों का हिस्सा लगातार बढ़ता जा रहा है। यह बात स्पष्ट है कि हम भारतीय बैंकिंग के नए चरण के उस शुरुआती दौर से गुजर रहे हैं जिसमें घरेलू और बाह्य दोनों स्तरों पर प्रतिस्पर्धात्मक दबावों का सामना करना पड़ रहा है और

इसमें बैंकों के लिए आवश्यक है कि वे अपनी कारोबारी योजना का निरंतर मूल्यांकन करते रहें और अपनी स्थिति जांचते रहें।

भारतीय बैंकों के लिए भविष्य की चुनौतियां

जिन चुनौतियों से भारतीय बैंक रूबरू होंगे वे हैं : वैश्वीकरण से उत्पन्न जोखिमों के खतरे, बासल II का कार्यान्वयन, जोखिम प्रबंधन प्रणाली में सुधार, नए लेखा मानकों का कार्यान्वयन, पारदर्शिता और प्रकटीकरण में अभिवृद्धि, ग्राहक सेवा में अभिवृद्धि, और तकनीक लागू करना।

वैश्वीकरण-चुनौती के साथ-साथ अवसर भी

आज पूरे विश्व में वैश्वीकरण की बयार बह रही है। यह बयार अपने साथ कई अवसर लेकर आई है मगर इनके साथ सहवर्ती जोखिम भी जुड़े हैं। सूचना और संचार तकनीक में हुई जबरदस्त प्रगति से घरेलू बाजार और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजार के एकीकरण में सहूलियत हुई है। यह धारणा बलवती होती जा रही है कि राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर कारोबार करने में देशों की क्षमता और संभाव्य पतन जोखिमों को सहन करने की क्षमता अन्य बातों के साथ-साथ वित्तीय प्रणाली की मजबूती पर निर्भर करती है। तकनीक का निरंतर परिष्करण और गैर-व्यवधान तथा परामर्शी प्रक्रिया के माध्यम से वित्तीय क्षेत्र में संस्थानिक ढांचा बनाने की दिशा में पहल करने सहित सर्वोत्तम अंतरराष्ट्रीय प्रथाओं के साथ विवेकसम्मत मानदंड स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

पूंजी खाते की दिशा में पहल

पूर्ण पूंजी खाता परिवर्तनीयता पर गठित समिति (अध्यक्ष : श्री.एस.एस.तारापोर) ने यह महसूस किया कि पूर्ण पूंजी खाता परिवर्तनीयता के दौर में बैंकिंग प्रणाली बाजार के बड़े उतार-चढ़ावों से एक्सपोज होगी। चलनिधि जोखिम, ब्याज दर जोखिम, मुद्रा जोखिम, प्रतिपक्ष जोखिम और अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाह से उत्पन्न राष्ट्र जोखिमों के मद्देनज़र बैंकिंग प्रणाली में जोखिम प्रबंधन क्षमताओं को बढ़ाने की आवश्यकता है। ऋण व्युत्पन्न तथा ब्याज दर व्युत्पन्न जैसे व्युत्पन्न लिखतों के प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने से जो संभाव्य जोखिम हो सकते हैं उनके बारे में भी विनियामक और पर्यवेक्षण प्रणाली को समझने की आवश्यकता है। बृहद पूंजी प्रवाह के संदर्भ में वित्तीय मध्यस्थों के अंतरदेशीय पर्यवेक्षण से संबंधित मसले अभी उभर ही रहे हैं और इन्हें सुलझाने की आवश्यकता है।

बासल II का कार्यान्वयन

रिज़र्व बैंक और वाणिज्य बैंक बासल II के कार्यान्वयन के लिए तैयारियां कर रहे हैं। यह निश्चय किया गया है कि नए मानदंडों के अनुपालन के लिए बैंकों को कुछ समय और दिया जाए। बासल II के कार्यान्वयन के लिए 31 मार्च 2007 की निर्धारित समय-सीमा के विपरीत अक्तूबर 2006 में निश्चय किया गया कि 31 मार्च 2008 से बासल II के तहत भारत में कार्यरत विदेशी बैंक और विदेशों में पैठ बनाए हुए भारतीय बैंकों को ऋण जोखिम के लिए मानक दृष्टिकोण तथा परिचालन जोखिम के लिए आधारभूत संकेतक दृष्टिकोण अपनाना होगा जबकि अन्य अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को 31 मार्च 2009 तक बासल II में अंतरित होना होगा।

यह सर्वविदित तथ्य है कि बासल II के कार्यान्वयन से बैंकों और विनियामक दोनों के ही समक्ष चुनौतियां प्रस्तुत होंगी। बासल II के कार्यान्वयन को अनुपालन चुनौती के रूप में भी देखा जा सकता है। मगर इसके

साथ ही परिष्कृत जोखिम प्रबंधन प्रणाली तथा पूंजी दक्षता में सुधार के रूप में इससे बैंकों को दो अवसर प्राप्त होंगे। बासल I से बासल II के अंतरण में पूंजी पर्याप्तता से पूंजी दक्षता की ओर अग्रसर होना अनिवार्यतः शामिल है। आने वाले वर्षों में इस अंतरण में ईक्विटी-पर-प्रतिलाभ नीति के महत्वपूर्ण कारक में यह शामिल होगा कि कितनी पूंजी उपयोग में लाई गई है और कितनी पूंजी आवश्यक है।

बैंकों के जोखिम का मूल्यांकन करने के लिए बाजार पर निर्भर रहने से पारदर्शिता और बाजार प्रकटीकरण, जोखिम प्रोफाइल की जानकारी देने वाली महत्वपूर्ण सूचना, पूंजी ढांचा और पूंजी पर्याप्तता पर ध्यान बढ़ता जाएगा। बेहतर जानकारी रखने वाले निवेशकों के प्रति बैंकों को अधिक उत्तरदायी एवं प्रतिसादपरक बनाने के अतिरिक्त इन प्रक्रियाओं से बैंकों को जोखिम और पुरस्कार के बीच सही संतुलन बनाने तथा बाजार तक पहुंच बनाने में मदद मिलती है। बाजार की स्थिति भी बैंकों और विनियामकों के बीच बृहद समन्वय की मांग करती है।

जोखिम प्रबंधन प्रणाली में सुधार

बासल II ने ऋण और बाजार जोखिम और इनके आपसी संबंधों समेत विभिन्न प्रकार के जोखिमों से निपटने के लिए जोखिम प्रबंधन की व्यापक प्रणाली की आवश्यकता को प्रकाश में ला दिया। भारत में भी बैंक अब एकल साइलो प्रणाली से उद्यम-विस्तृत जोखिम प्रबंधन प्रणाली की ओर उन्मुख हो रहे हैं। इस दिशा में पहला कदम होगा कि पूरी संस्था में जोखिम समेकन किया जाए जबकि दूसरा कदम होगा कि विशिष्ट जोखिम क्षेत्रों के साथ-साथ सभी जोखिमों को पूरे समूह में जोखिम समेकन में वृद्धि करना। अतः बैंकों से अपेक्षित है कि वे इसके लिए पर्याप्त संसाधन आबंटित करने का प्रयत्न करें। भारत में बैंकों के समेकित जोखिम प्रबंध प्रणाली में अंतरित होने के लिए पर्यवेक्षण का जोखिम आधारित दृष्टिकोण उत्प्रेरक का काम करता है। तथापि, भारतीय बैंकिंग प्रणाली के विविधता भरे स्वरूप को देखते हुए प्रभावी पर्यवेक्षण प्रक्रिया के रूप में जोखिम आधारित पर्यवेक्षण (आरबीएस) को स्थायित्व प्रदान करना भी एक चुनौती है।

कारपोरेट गवर्नेंस

व्यापक स्तर पर अगर देखा जाए तो जोखिम प्रबंधन की असफलता हित-टकराव के खराब प्रबंधन, बैंकिंग के मुख्य जोखिमों की अपर्याप्त समझ, जोखिम प्रबंधन तथा आंतरिक लेखा-परीक्षा प्रक्रिया के प्रति मंडल की असावधानी से उत्पन्न होने वाली कारपोरेट गवर्नेंस की कड़ी टूटने का प्रतिबिंब होती है। बैंकों में प्रभावी जोखिम प्रबंधन के लिए कारपोरेट गवर्नेंस एक नींव की तरह है और इस तरह यह सुदृढ़ वित्तीय प्रणाली के लिए भी नींव जैसी है। अपने यहां जोखिम प्रबंधन और कारपोरेट गवर्नेंस स्थापित करने के लिए बैंक जिस भी नीति का चयन करेंगे वह वित्तीय स्थायित्व पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालेगी। अपने परिचालनों में बैंक समुचित जांच और संतुलन के साथ अपने यहां बेहतर गवर्नेंस परिवेश बनाएं। निरीक्षण के इन चार रूपों को समुचित जांच और संतुलन सुनिश्चित करने के लिए किसी भी बैंक के संस्थागत ढांचे में शामिल किया जाना चाहिए : (i) बैंक के निदेशक मंडल या पर्यवेक्षी मंडल द्वारा निरीक्षण; (ii) विभिन्न कारोबारी क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों को छोड़कर अन्य व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण; (iii) कारोबार के विभिन्न क्षेत्रों का प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण; और (iv) स्वतंत्र जोखिम प्रबंधन, अनुपालन और लेखा-परीक्षा कार्य। इसके अलावा, यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रमुख कर्मचारी अपने कार्य के लिए उचित एवं उपयुक्त हों। बैंकों में स्वामित्व

का एक विशिष्ट ढांचा होता है मगर इसके बावजूद सभी बैंकों पर बेहतर कारपोरेट गवर्नेंस के सामान्य सिद्धांत लागू किए जाएं।

नए लेखा मानकों का कार्यान्वयन

बैंकों में व्युत्पन्न गतिविधियां तेजी से बढ़ रही हैं। भारतीय बैंकों के लिए व्युत्पन्न ट्रेडिंग अपेक्षतया एक नया क्षेत्र (विशेषतः अधिक संरचित उत्पादों के मामले में) है, पर जोखिम प्रबंधन का ढांचा इसकी पूर्व-शर्त है। इस बारे में स्पष्ट लेखांकन दिशानिर्देश न होना चिंता का विषय है। विश्व बैंक की आरओएससी ने भारतीय लेखा और लेखा-परीक्षा में उन लेखा मानकों की अनुपस्थिति पर टिप्पणी की है जिनमें वित्तीय लिखतों से संबंधित पहचान, मापन तथा प्रकटीकरण के बारे में उल्लेख किया जाता है। इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया (आइसीएआइ) का लेखा मानक मंडल वित्तीय लिखतों के बारे में लेखा मानक जारी करने पर विचार कर रहा है। ये अंतरराष्ट्रीय लेखा मानक 32 और 39 के भारतीय समकक्ष होंगे। प्रस्तावित लेखा मानक वित्तीय संस्थाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालेंगे और वित्तीय क्षेत्र पर इनका असर पड़ेगा। इस प्रक्रिया के चरणों को देखते हुए आइसीएआइ द्वारा इन लेखा मानकों की औपचारिक शुरुआत करने में कुछ समय लग सकता है। इस बीच रिज़र्व बैंक इसकी आवश्यकता महसूस कर रहा है कि बैंक और वित्तीय संस्थान आइएएस 39 के मुख्य-मुख्य आधारभूत सिद्धांत अंगीकार करें। चूंकि इससे कुछ विनियामक/ विवेकसम्मत मसले उठ सकते हैं, इसी कारण सभी संबंधित पक्षों की व्यापक रूप से जांच की जा रही है। परंपरा के अनुसार ही इस प्रस्ताव को लाने से पहले बाजार सहभागियों से इस बारे में विचार-विमर्श किया जाएगा। इन सिद्धांतों को स्वीकार करने और कार्यान्वयन से बैंकों और रिज़र्व बैंक के समक्ष एक बड़ी चुनौती आएगी।

वित्तीय समुच्चयों का पर्यवेक्षण

आज के वित्तीय परिदृश्य में मर्चेंट बैंकिंग, बीमा आदि जैसे अन्य वित्तीय खंडों में कुछ बड़े बैंकों का प्रवेश होता दिख रहा है। बड़े खंडों में वैविध्यपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराने वाले कई नए खिलाड़ियों के उभरने से पर्यवेक्षण के लिए यह आवश्यक है कि वह वित्तीय क्षेत्र के विभिन्न खंडों तक अपनी पहुंच बढ़ाए। इस दिशा में पहल करते हुए रिज़र्व बैंक, सेबी तथा बीमा विनियामक तथा विकास प्राधिकरण (आइआरडीए) से सदस्य लेकर एक अंतर-विनियामक कार्य समूह का गठन किया गया। समूह ने जिस ढांचे का प्रस्ताव दिया है वह उस वर्तमान विनियामक ढांचे का अनुपूरक है जिसमें प्रत्येक संस्था संबंधित विनियामक से विनियमित होती है और चिन्हित वित्तीय समुच्चय सूचना के अंतर-विनियामक लेनदेन प्रणाली के माध्यम से विनियामक से केन्द्रीभूत रूप में पर्यवेक्षित होते हैं। इस दिशा में पहले कदम के रूप में, उक्त तीन पर्यवेक्षी निकायों वाले वित्तीय समुच्चय पर एक अंतर-संस्था कार्य दल ने 23 वित्तीय समुच्चयों की पहचान की और इनसे जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रायोगिक प्रक्रिया प्रारंभ की । वित्तीय समुच्चयों के पर्यवेक्षण में निहित जटिलता न केवल भारतीय रिज़र्व बैंक के लिए बल्कि अन्य विनियामक संस्थाओं के लिए भी चुनौती है जिसके लिए निरंतर आधार पर सूक्ष्म और लगातार समन्वय आवश्यक है।

बैंकों के समूहों का समेकित पर्यवेक्षण करने हेतु पर्यवेक्षकों को अधिकार प्रदान करने के लिए केंद्रबिंदू बनाने के दृष्टिकोण से और चूंकि बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासल समिति द्वारा जारी किए गए परिणामी बैंकिंग पर्यवेक्षण के मुख्य सिद्धांत ने समेकित पर्यवेक्षण को स्वतंत्र सिद्धांत के रूप में रेखांकित किया है, अतः रिज़र्व बैंक ने प्रारंभिक उपायों के रूप में समेकित लेखाप्रणाली

और समेकित पर्यवेक्षण को सुकर बनाने की दृष्टि से अपनाई गई अन्य मात्रात्मक पद्धति आरंभ की है। समेकित पर्यवेक्षण के घटकों में जनसामान्य के प्रकटीकरण हेतु समेकित वित्तीय विवरण, पर्यवेक्षण जोखिम निर्धारण और समूह आधार पर कतिपय विवेकपूर्ण विनियमों का अनुप्रयोग शामिल है। उचित अवधि में उक्त के अनुसार आरंभ किए गए समेकित पर्यवेक्षण में मिश्र समुच्चयों में बैंकों को शामिल किया जाएगा जहां अन्य विनियामकों के अधिकार क्षेत्र में आनेवाले मूल बैंक गैर-वित्तीय इकाई या वित्तीय इकाई हो सकते हैं।

उच्च प्रौद्योगिकी का उपयोग

बैंकिंग क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की मुख्य भूमिका कारोबार के नए तरीके तथा प्रक्रिया तैयार करने, प्रतियोगी लाभ बनाए रखने, बैंकों में जोखिम प्रबंधन की गुणवत्ता बढ़ाने और वितरण प्रणालियों को मजबूत बनाने की है। उनकी तकनीकी बुनियादी संरचना के आधुनिकीकरण के लाभ को पहचानते हुए बैंक सही कदम उठा रहे हैं। ऐसा करते समय बैंकों के सामने चार विकल्प हैं : वे स्वयं नई प्रणाली बना सकते हैं, या सर्वोत्तम मॉड्यूल्स खरीद सकते हैं, या कोई व्यापक समाधान खरीद सकते हैं, या आउटसोर्स कर सकते हैं। इस संबंध में बैंकों के सामने आने वाली एक चुनौती यह सुनिश्चित करना है कि वे प्रौद्योगिकी में उनके निवेश से अधिकतम लाभ प्राप्त करते हैं और निरर्थक व्यय से बचते हैं जो असमन्वित और अधूरी प्रौद्योगिकी अपनाने से उत्पन्न हो सकता है : अनुपयुक्त / असंगत प्रौद्योगिकी अपनाना और पुरानी प्रौद्योगिकी अपनाना। एक महत्वपूर्ण बात बासल II अपेक्षाएं पूरी करने के लिए कुछ बैंकों द्वारा उनका स्तर या अनुकूलन के मूल्यांकन के बिना कोर बैंकिंग सोल्यूशन का कार्यान्वयन है।

वित्तीय समावेशन

बैंक उन पर आई जिम्मेदारी पूरी करने की पद्धति पर ध्यान दे रहे हैं, वहीं बैंकिंग प्रथाओं के बारे में उचित चिंताएं हैं जिनके अनुसार जनसंख्या के बड़े भाग को आकर्षित करने के बजाय बाहर रखा जाता है, विशेष रूप से पेंशनर, स्वनियोजित और असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत लोग। यद्यपि वाणिज्यिक विचार निसंदेह महत्वपूर्ण हैं, बैंकों को अनेक सुविधाएं प्राप्त हैं, विशेष रूप से लोगों से ऊंचे लीवरेज के आधार पर जमाराशि लेना और फलस्वरूप उन्हें जनसंख्या के सभी घटकों को समान आधार पर बैंकिंग सेवाएं देनी चाहिए। इसके अलावा, अनुभव यह दर्शाते हैं कि उपभोक्ताओं का हित कभी-कभी पूरी तरह संरक्षित नहीं होता है और उनकी शिकायतों पर ठीक से ध्यान नहीं दिया जाता है। प्राप्त प्रतिसूचना से यह पता चलता है कि अनुचित उच्च सेवा/ उपयोगकर्ता शुल्क लगाए जा रहे हैं और उपयोगकर्ता शुल्क लगाने से पहले उचित और समयपूर्व सूचना भी नहीं दी जाती है। इस संबंध में गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक ने वार्षिक नीति वक्तव्य 2005-06 में यह उल्लेख किया था कि देश में अधिक वित्तीय समावेशन के लिए रिज़र्व बैंक प्रयास करेगा; ग्राहकों के साथ अच्छा व्यवहार होने के लिए प्रणाली स्थापित की जाएगी; और ग्राहकों की शिकायतों का प्रभावी समाधान किया जाएगा।

निष्कर्ष

भारतीय बैंकिंग उद्योग के वैश्वीकरण के बढ़ते हुए स्तर, यूनिवर्सल बैंकों की उत्पत्ति और वित्तीय सेवाओं के समुच्चयन से बैंकिंग उद्योग में प्रतिस्पर्धा आगे और बढ़ेगी। बैंकिंग उद्योग में समयानुसार उभरने की संभाव्यता और योग्यता है जैसा कि स्वचलन की तेज

गति से पता चला है जिसका बैंकिंग सेवाओं के स्तर बढ़ने पर प्रभाव हुआ है। वित्तीय प्रणाली के बड़े सहभागी अलग-अलग बैंकों की वित्तीय शक्ति वित्तीय जोखिम के प्रति रक्षा की पहली पंक्ति है। मजबूत वित्तीय स्थिति और तुलनपत्र बैंकों को अच्छी स्थिति में रखता है और आर्थिक आघात सहने की शक्ति देता है।